Academe Journal of Education & Psychology
Volume-7, Issue-2, Year-2017
PP: 43-48 *ISSN No: 2249-040X*

भारत में अल्पसंख्यकों के सरोकार व मुद्दे : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. देवेन्द्र पाल सिंह तोमर

एसोशीएट प्रोफेसर, जनता वैदिक परास्नातक कॉलेज, बड़ौत (बागपत) उत्तर प्रदेश

सार

यह शोधपत्र भारत में अल्पसंख्यकों से संबंधित मुद्दों के राजनीतिक पहलुओं का विश्लेषण करने का एक प्रयास करता है। यहां, एक विशिष्ट भाषाई या धार्मिक झुकाव वाले ऐसे लोगो जो संख्या बल कम होते है, को अल्पसंख्यक का दर्जा दिया गया है। जैसा कि भारतीय संविधान का न्यायशास्त्र धर्मनिरपेक्षता की गारंटी के साथ कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण का आश्वासन देता है। लेकिन पूरा राजनीतिक क्षेत्र वोट बैंक के लिए छद्म धर्मनिरपेक्ष आयाम के इर्द-गिर्द घूमता है। अल्पसंख्यकों के अधिकांश मुद्दे अभी भी अनसुलझे हैं और वे पहचान, सांस्कृतिक समायोजन और आवास की समस्या का भी सामना कर रहे हैं।

मुख्य शब्दः संविधान, दलित, पहचान, अल्पसंख्यक, राजनीति, धर्मनिरपेक्ष

परिचय:

भारत दुनिया की कुल आबादी का लगभग छठा हिस्सा है, जो विषम समाज का एक अनूठा मामला बन गया है। लगभग सभी प्रमुख विभिन्न जातियों, संस्कृतियों, धर्मों, जातीय समूहों और विविध पहचानों को इस उपमहाद्वीप में उनकी उपस्थिति का एक तत्व मिलता है। भारतीय राजनीति के पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में जनसंख्या का यह विविध चरित्र हमेशा एक महत्वपूर्ण कारक रहा है। आज यह उस महत्वपूर्ण मुद्दे पर आ गया है जिसके इर्द-गिर्द भारत में सत्ता के लिए संघर्ष घूमता है। भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, यहूदी, बौद्ध, जैन और पारसी आदि धर्म के लोग एक साथ रहते हैं। साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अशरफ, अजलाफ, जाट-सिख, रविदासिया सिख, मजहबी सिख, राय सिख, कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट और दलितों की पारंपरिक पहचान लगभग सभी इस क्षेत्र में निवास करते हैं। इसके अलावा भारत में कश्मीरी, पंजाबी, बंगाली, मलयाली, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और अन्य भाषाई पहचान के लोग भी हैं। इसके अलावा भारत में अमीर और गरीब, ग्रामीण और शहरी लोग रहते हैं जो इसे विविधता का एक और स्वाद दे देता हैं।

धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा

भारत के संविधान के मुख्य पाठ में धर्मनिरपेक्ष शब्द का कहीं भी उपयोग नहीं किया गया है, फिर भी इसकी प्रस्तावना इसे एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक देश घोषित करती है। संविधान यह स्पष्ट करता है कि राज्य का कोई धर्म नहीं होगा और कोई पसंदीदा नागरिक नहीं होगा। जहां तक लोकतंत्र का संबंध है, भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जो भारत में मौजूद सभी विविध नागरिको को राजनीतिक भागीदारी की गारंटी देता है, क्योंकि देश के भविष्य को नीति बनाने और निर्धारित करने में उनकी समान हिस्सेदारी है। हालाँकि, लोकतंत्र न केवल शासन से संबंधित है, बल्कि संख्या के बारे में भी है। इसलिए जहां तक सरकार बनाने का सवाल है, उनकी संख्या के आधार पर अलग-अलग वर्ग कमोबेश महत्वपूर्ण हो जाते हैं और यहां अल्पसंख्यकों का मुद्दा प्रमुख हो जाता है।

अल्पसंख्यक की अवधारणा

'अल्पसंख्यक' शब्द एक विशिष्ट जाति, भाषा, धर्म या किसी अन्य सामाजिक विशेषता वाली आबादी के एक हिस्से से संबंधित है, जिसके कारण अन्य लोग उन्हें कुछ अलग और बाकी से अलग देखते हैं, जबकि अल्पसंख्यक संदेह से दूसरों को प्रभावशाली मानते हैं। भारत के सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में, 'अल्पसंख्यक' शब्द में हर संभव प्रकार के समूह शामिल हैं- नस्लीय, भाषाई, धार्मिक और क्षेत्रीय और इसके अलावा भारतीय समाज के लिए अद्वितीय समूह: निम्न जाति की स्थिति आदि के आधार पर अल्पसंख्यक।[1] आम तौर पर सभी बोलते हुए भारत में हिंदू धर्म और समाज के विभिन्न कमजोर वर्गों के अलावा अन्य धर्मों को अल्पसंख्यक का हिस्सा माना जाता है। भारत में अल्पसंख्यकों की भेद्यता और असुरक्षा का लाभ उठाते हुए, जो दुनिया में कहीं भी अल्पसंख्यक के लिए

© National Press Associates www.npajournals.org

स्वाभाविक है, चुनावी विचारों ने धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक दलों को अल्पसंख्यकों को वोट बैंक के रूप में मानने के लिए प्रेरित किया है। विभिन्न राजनीतिक हितों के साथ कई विद्वानों और शिक्षाविदों का मानना है कि इसने उन्हें गैर-कार्यक्रम, गैर-वैचारिक या यहां तक कि स्पष्ट रूप से सांप्रदायिक आधार पर अल्पसंख्यकों के राजनीतिक समेकन को प्रोत्साहित करने या कम से कम विरोध नहीं करने के लिए प्रेरित किया है।[2]

भारत में मुस्लिम हालांकि संख्या के मामले में केवल इंडोनेशिया के बाद सबसे बड़े अल्पसंख्यक हैं।[3] यद्यपि वे भारत की लगभग 14% आबादी में शामिल हैं, फिर भी सबसे कम रोजगार दर के साथ आर्थिक रूप से सबसे पिछड़े हैं। ईसाई दूसरे सबसे बड़े अल्पसंख्यक केरल राज्य और अन्य उत्तर-पूर्वी राज्यों में सबसे बड़ी उपस्थिति रखते हैं। वे स्वास्थ्य और शिक्षा क्षेत्र जैसे वंचितों के कल्याण और अन्य सामाजिक सेवाओं में अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व करते हैं। हालांकि पूरे देश में फैले हुए सिखों की उत्तर भारत में एक बड़ी उपस्थिति है, विशेष रूप से पंजाब में जहां वे न केवल बहुमत में हैं, बल्कि प्रमुख भी हैं। वे उत्कृष्ट कृषिविद हैं, उन्होंने हरित क्रांति में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और हमेशा भारतीय रक्षा बलों में एक बड़ा हिस्सा बनाए रखा है। इसके अलावा जैन और बौद्ध जैसे अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों ने भी भारतीय सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय संविधान के निर्माण के समय की बहस इस विचार के इर्द-गिर्द घूमती थी कि भारत को किसी भी धर्म, पंथ या आस्था के पेशे से कोई सरोकार नहीं होगा; और संघ में अपने नागरिकों या अन्य व्यक्तियों के किसी भी वर्ग के धर्म से संबंधित सभी मामलों में पूर्ण तटस्थता के दृष्टिकोण का पालन करेगा। भारत का संविधान भेदभाव से बचने और इन अल्पसंख्यक समुदायों के हितों और प्रगति को सुरक्षित करने से संबंधित कई अलग-अलग प्रावधानों का प्रावधान करता है।[4] फिर भी, दुनिया के किसी भी अन्य देश की तरह, भारत में भी अल्पसंख्यकों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये अल्पसंख्यक समूह हिंदू आबादी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर रहने के बावजूद हिंदू प्रभुत्व वाले समाज को पहचानने और पूरी तरह से घुलने-मिलने में सक्षम नहीं हैं। अल्पसंख्यकों का आरोप है कि उनके साथ हिंदुओं के साथ भेदभाव किया गया है और रोजगार, राजनीति, आर्थिक मोर्चे और अन्य सामाजिक सुविधाओं के क्षेत्र में उन्हें वंचित रखा गया है। नौकरशाही, चिकित्सा, इंजीनियरिंग और शिक्षा विभागों में अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व खराब है।[5]

यद्यपि धर्मनिरपेक्षता और समाज के सभी वर्गों के लिए समान सम्मान, विशेष रूप से अल्पसंख्यकों को भारत के संविधान के मूल सिद्धांतों के रूप में अपनाया गया है, फिर भी यह बहुआयामी और बहुआयामी चुनौतियों का सामना कर रहा है। कई बार विभिन्न चरमपंथी राजनीतिक समूह जैसे भाजपा/विहिप/आरएसएस इसे छद्म धर्मनिरपेक्षता बताते हैं, जिसमें अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों को खुश करने की प्रवृत्ति होती है। बैंगलोर में एक सम्मेलन में आरएसएस ने घोषणा की कि अल्पसंख्यक समुदाय की सुरक्षा बहुसंख्यकों की सद्भावना पर निर्भर करती है। आरएसएस और परिवार के संगठन अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के तुष्टिकरण के लिए कांग्रेस नेताओं की लगातार आलोचना करते रहे हैं। [6]यह इस तथ्य से भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारतीय समाज की बहुधार्मिकता को ध्यान में रखते हुए भी अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की घटना और उसके लाभों से खुद को दूर नहीं कर सकी। इसलिए अल्पसंख्यकों को आश्वस्त करने के लिए कांग्रेस ने अपने पहले तीन अध्यक्षों को चार में से केवल उन्हीं में से चुना: बदरुद्दीन तैयबजी (मुस्लिम), दादाभाई नौरोजी (पारसी), और जॉर्ज यूल (ईसाई)।[7]

इसके विपरीत प्रमुख समूहों में यह आशंका रही है कि ईसाई अपनी उपस्थिति बढ़ाने के लिए निम्न जाति के हिंदुओं या जनजातियों को अपने धर्म में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में शामिल हैं। यह कई बार बहुसंख्यक हिंदुओं और अल्पसंख्यक ईसाइयों के बीच हत्याओं और तीव्र हिंसक संघर्षों के परिणामस्वरूप हुआ है। जाहिर है इससे भारत में ईसाई अल्पसंख्यकों के बीच अविश्वास और असुरक्षा की भावना पैदा हुई है।[8] हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक दंगों ने, विशेष रूप से विभाजन के दौरान और बाद में, मुसलमानों में असुरक्षा की भावना पैदा की। गोधरा की घटना के प्रतिशोध में गुजरात में 2002 में बाबरी मस्जिद विध्वंस और फिर मुस्लिम विरोधी हिंसा ने भी भारत में सांप्रदायिक संवेदनशीलता और विभाजन को सामने ला दिया है।[9] सांप्रदायिक और चरमपंथी ताकतों द्वारा चुनावी प्रक्रिया को खराब करके अपने लाभ के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा धर्म में हेरफेर किया गया है। राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद, गोधरा दंगे आदि जैसी उपर्युक्त घटनाएं इसके उदाहरण हैं। इन संकटों के समय विभिन्न अल्पसंख्यक समूह उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकारी तंत्र की ओर देखते हैं। गुजरात में दंगों को नियंत्रित करने और

© National Press Associates www.npajournals.org

गोधरा कांड के बाद विशेष रूप से मुसलमानों को सुरक्षा प्रदान करने में मोदी सरकार की अक्षमता एक आदर्श उदाहरण है।[10]

यह किसी विशेष राजनीतिक दल पर उंगली उठाने के लिए नहीं है, बल्कि तब भी देखा गया है जब तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद सिखों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने में विफल रहने के लिए केंद्र की राजीव गांधी कांग्रेस सरकार को अपमानित किया गया था।[11] सरकार भी समय-समय पर सांप्रदायिक संगठनों और समूहों के दबाव के आगे झुकी है, जैसा कि मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अधिनियमन, सैटेनिक वर्सेज पर प्रतिबंध लगाने, बाबरी मस्जिद के ताले खोलने आदि से स्पष्ट है। यह सब स्पष्ट करता है कि सरकार ने समय-समय पर अपने स्वयं के वर्गीय हितों को बढ़ावा देने के लिए जातीय/अल्पसंख्यक कार्ड खेला है।[12]

देश में इन सांप्रदायिक दंगों में से अधिकांश माफिया, असामाजिक तत्वों और अपराधियों के साथ मिलकर असंतुष्ट राजनेताओं की करतूत रही है। उपर्युक्त और इसी तरह की अन्य घटनाएं जो भारत में बहुत आम हैं, कुछ गंभीर अंतर्निहित कमजोरियों और हमारे संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और अन्य सिद्धांतों के प्रति भारतीय प्रतिबद्धता को प्रकट करती हैं। ये उदाहरण न केवल अल्पसंख्यकों की स्थिति को जटिल और गंभीर बनाते हैं बल्कि धर्मनिरपेक्षता को अवसरवाद और लोकलुभावनवाद के नारे तक सीमित कर देते हैं। हाल ही में जयपुर साहित्य उत्सव में एक और मनोरंजक तथ्य सामने आया जहां सरकार ने महसूस किया कि मुस्लिम अल्पसंख्यक, संख्या में लगभग चौदह करोड़, कुछ लेखकों और कार्टूनिस्टों के लिए असुरक्षित थे। इन सबके पीछे राजनीतिक लाभ मुख्य मार्गदर्शक सिद्धांत रहे हैं जो संकटों से निपटने में सरकार की अक्षमता को भी दर्शाता है।

भारत में दलित और अन्य कमजोर जातियाँ और वर्ग भारत में अल्पसंख्यकों के एक अन्य पहलू का प्रतिनिधित्व करते हैं। दलित उत्पीड़न की जड़ें हिंदू धर्म में व्याप्त जाति व्यवस्था में खोजी जा सकती हैं, जो मनुस्मृति में निहित है, जो दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से एक पवित्र हिंदू ग्रंथ है। यद्यपि भारत का संविधान मुख्य रूप से दलितों से जुड़ी अस्पृश्यता को समाप्त करता है, फिर भी वे सभी स्तरों पर आरक्षण की विवादास्पद प्रणाली के बावजूद मुख्यधारा की बहस और चर्चा का हिस्सा नहीं बन पाए हैं। चूंकि उनमें से अधिकतर सीमांत किसान या भूमिहीन मजदूर हैं, इसलिए आर्थिक शोषण उनकी सबसे बड़ी चिंता बनी हुई है। बेहतर जीवन की संभावनाओं की तलाश में बड़ी संख्या में शहरों या अन्य स्थानों की ओर पलायन होता है जबकि अन्य कर्ज में डूबे होते हैं और बंधुआ मजदूरी के रूप में अपने कर्ज को चुकाने के लिए बाध्य होते हैं। व्यवहार में इस तरह के ऋणों का भुगतान करना लगभग असंभव है क्योंकि ब्याज दरें अधिक हैं और गरीबी मजदूर को गहरे कर्ज में डाल देती है जो कि एक दुष्चक्र पैदा करने वाली अगली पीढ़ी को दिए जाने की संभावना है। विरोध करने पर उसका सामना हिंसा से किया जाता है। निस्संदेह, आरक्षण आजादी के बाद से और उससे पहले भी अस्तित्व में रहा है और इसने नए शिक्षित दलित मध्यम वर्ग के निर्माण में मदद की है, लेकिन यह अपेक्षाकृत और आनुपातिक रूप से बहुत कम है। लाभ दलितों के भीतर कुछ प्रमुख समूहों तक सीमित पाया गया है, जबकि उनमें से अधिकांश जो वास्तव में जरूरतमंद हैं, अभी भी विशेषाधिकारों का उपयोग करने में विफल हैं।

एक और कमी उनके बच्चों की स्कूलों से अनुपस्थिति रही है। हालांकि शिक्षा दस्तावेज यह आश्वासन देते हैं कि स्कूल सभी बच्चों के लिए पैदल दूरी के भीतर उपलब्ध हैं, फिर भी जब जमीनी हकीकत की बात आती है तो तस्वीर उतनी उत्साहजनक नहीं होती है। इसके अलावा, ज्यादातर बार ये स्कूल उच्च जाति के क्षेत्र में स्थित होते हैं, जो व्यावहारिक रूप से निचली जाति के बच्चों के लिए सुलभ होते हैं, जो उनके लिए वास्तव में एक दुर्दशा की स्थिति को जोड़ता है।

फिर से विभिन्न राजनीतिक दलों ने समय-समय पर इन अल्पसंख्यक जातियों के समूहों से संबंधित मुद्दों को उठाने की कोशिश की, लेकिन अंततः उन्हें केवल मोहभंग और निराशा ही हुई है। कांग्रेस, भाजपा, सपा, राजद, बसपा आदि सभी को बार-बार आजमाया गया है लेकिन उन सभी ने अभी तक इन समुदायों की केवल आवाज ही बुलंद की है और अभी तक कुछ भी ठोस नहीं निकला है। अमीर और गरीब के बीच की खाई केवल चौड़ी हुई है और केवल अमीर दलितों के एक नए वर्ग को जन्म दिया है, जिन्होंने अपने पूर्व भाइयों के राजनीतिक शोषण से लाभ उठाया है।

© National Press Associates www.npajournals.org

यद्यपि धर्मनिरपेक्षता अल्पसंख्यकों द्वारा समर्थित है क्योंकि इसने उन्हें अपने व्यक्तिगत कानूनों और अल्पसंख्यकों की स्थिति को बनाए रखने की अनुमति दी है, इसके विपरीत वे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की इस बहाने आलोचना करते हैं कि यह उनके हितों की रक्षा करने में विफल रही है, विशेष रूप से संकट के समय यानी सांप्रदायिक दंगों आदि के दौरान। बहरहाल, अल्पसंख्यकों से जुड़े विभिन्न मुद्दों ने सरकारों पर उन्हें ध्यान में रखते हुए नीतियां बनाने और लागू करने का बहुत दबाव डाला है। ये समूह इतने विषम और खंडित हैं कि एक ही योजना में विभिन्न हितों को शामिल करना मुश्किल हो जाता है। इस मुद्दे से निपटने के दौरान काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है; इनमें संपत्ति के अधिकारों और हितों से संबंधित नीतियों के कार्यान्वयन और धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों के पुनर्गठन के साथ समस्याएं शामिल हैं। राजनीतिक ढांचे के भीतर विद्यमान बहुलता और उससे उत्पन्न दबाव अब दिखाई देने लगा हैं और अल्पसंख्यक समूहों की स्थिति को प्रभावित करने वाले सामाजिक मिश्रण की प्रक्रिया को महसूस किया जा सकता है।

वर्तमान की यह आवश्यकता है कि कागजों पर चलाई जा रही विभिन्न सामाजिक लाभ योजनाएँ वास्तव में जनता तक पहुँचें और इसके लिए लोगों को इनके और उनके उपयोग के बारे में जागरूक करने की आवश्यकता है। भारत आजादी के बाद से ही दलितों के उत्थान के लिए जाति आधारित आरक्षण चला रहा है और कुछ हद तक यह उपयोगी भी साबित हुआ है। इन नए पढ़े-लिखे दलितों को आगे आना चाहिए और दूसरों को भी जागरूक करना चाहिए ताकि वे भी इसका लाभ उठा सकें। विभिन्न सरकारें विभिन्न शिक्षा योजनाएं लाई हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश वांछित परिणाम देने में विफल रही हैं। सरकार को इन मुद्दों और लोगों की चिंताओं को उनकी महसूस की गई जरूरतों को पहचानते हुए संबोधित करना चाहिए। जब तक ये लोग शिक्षित नहीं होंगे, इनका उत्थान दूर का सपना बना रहेगा। इसके अलावा सत्ता संरचना दलितों को जीने के लिए चुनने की स्वतंत्रता को कम करती है। दलितों की भलाई की गतिशीलता को समझने के लिए जाति व्यवस्था की शक्ति संरचना का आकलन करना महत्वपूर्ण है। राज्यों को मौजूदा विविधता को पहचानने और उसके अनुसार कार्य करने की आवश्यकता है।

अल्पसंख्यकों की अवधारणा एक सापेक्ष अवधारणा है। अन्य अल्पसंख्यकों की तुलना में भारत में चौदह करोड़ मुसलमान अल्पसंख्यक नहीं लगते। आम तौर पर, राज्य अन्य बड़े अल्पसंख्यक समूहों की तुलना में छोटे अल्पसंख्यकों के हितों को अधिक जोखिम में मानते हुए उनके हितों की रक्षा करते हैं। हालाँकि, भारत में राजनीतिक नेता अल्पसंख्यकों के मुद्दे को केवल चुनाव के चश्मे से देखते हैं और अल्पसंख्यकों के सबसे बड़े यानी मुसलमानों को दूसरों की कीमत पर लुभाने की कोशिश करते हैं। मणिपुर जैसे मूक अल्पसंख्यकों, जहां केवल दो लोकसभा सीटें हैं, उदासीनता के साथ मुलाकात की जाती है, जबकि उत्तर प्रदेश या बिहार जैसे राज्यों के अल्पसंख्यक जो बड़ी संख्या में नेताओं को संसद भेजते हैं, उन्हें कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जाता है।

यह समय अल्पसंख्यकों की अवधारणा को बदलने और इसे व्यापक और नया आकार देने का है। अल्पसंख्यकों के कई ऐसे समूह हैं जिन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा रहा है क्योंकि उनके पास एक बड़ा संगठित वोट बैंक नहीं है। इनमें से कुछ वंचित और मूक अल्पसंख्यक उत्तर-पूर्व के लोग, लेखक और कलाकार, आदिवासी, ठेका मजदूर, एकल माता-पिता, हुक्का धूम्रपान करने वाले, लिव-इन जोड़े, वेश्याएं, समलैंगिक और ट्रांसजेंडर वयस्क, गांव की स्कूली छात्राएं, कैदी हो सकते हैं। चूंकि इन समूहों की जरूरतें और कमजोरियां उनकी संख्या के व्युत्क्रमानुपाती हैं, उनमें से कोई भी वास्तव में इस देश के अवसरवादी राजनीतिक वर्ग के लिए मायने नहीं रखता है।

महत्वपूर्ण पहलू

आज कठिनाई यह है कि कैसे अल्पसंख्यक जनसमूह को एक ऐसे संकल्प में पिरोया जाए जो सार्वभौमिक हो और एकता की ओर ले जाने वाले मार्ग पर अग्रसर हो। भारत में अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यापक मुद्दों के समाधान के लिए कुछ कदम तत्काल उठाए जाने की आवश्यकता है। कुछ उपाय सुझाए जा सकते हैं यथा: राजनीति को जहां तक संभव हो धार्मिक विभाजन के क्षेत्र से अलग करने की कोशिश की जानी चाहिए और विकास, रोजगार, समान विकास और एकता पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। विभिन्न सरकारी या निजी रूप से प्रबंधित संस्थानों को गैर-पक्षपातपूर्ण तरीके से कार्य करना चाहिए और किसी भी संकट के समय में सामग्री और मानव संसाधनों के नुकसान को रोकने के लिए ठीक से कार्य करना चाहिए। इन प्रयासों के अलावा कड़े कानून बनाए जाने चाहिए और उसी अर्थ में लागू किया जाना चाहिए जिससे सांप्रदायिक दंगों के दोषियों से सख्ती से निपटा जा सके।

© National Press Associates www.npajournals.org

निष्कर्ष

यह समय की मांग है कि नागरिक समाज समूहों और धर्मनिरपेक्ष ताकतों को खुद को मजबूत करना चाहिए ताकि वे कट्टरपंथी ताकतों से बेखौफ लड़ सकें। ये विभिन्न कदम, यदि लागू किए जाते हैं, तो अल्पसंख्यकों में न केवल सुरक्षा की भावना पैदा होगी, बल्कि राष्ट्र के विविध चरित्र के रूप में मौजूद विशाल सामग्री और मानव संसाधन के नुकसान को भी रोका जा सकेगा। विकास और विकास से संबंधित अन्य प्रासंगिक मुद्दों पर ध्यान देने में राजनीतिक तंत्र की मदद करने के अलावा यह भारत के एक सच्चे लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष चरित्र को भी प्रकट करेगा।

अंत नोट्स:

[1] भारत के संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार अल्पसंख्यक में भारत के क्षेत्र या उसके किसी हिस्से में रहने वाले नागरिकों का कोई भी वर्ग शामिल है, जिसकी अपनी एक अलग भाषा, लिपि या संस्कृति है। अनुच्छेद 30 में कहा गया है कि सभी अल्पसंख्यक चाहे धर्म या भाषा के आधार पर हों...

[2] चंद्रा, बिपिन, कम्युनलिज्म: ए प्राइमर, (नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स, 2004), .57

[3] सेठी, जजनेस्वर, धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्या: धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र के लिए एक बड़ी चुनौती, रेडियंस व्यू वीकली, 2 अक्टूबर 2008।

[4] वाधवा, के.के., माइनॉरिटी सेफगार्ड्स इन इंडिया (लंदन: थॉमस पब्लिशिंग हाउस, 1975) पी.2।

[5] चंद्रा, बिपिन, सांप्रदायिकता: एक प्राइमर, सेशन। सीटी।, .54।

[6] द हिंदू, 20 मई 2002।

[7] हिंदू गिवेन डेथ फॉर किलिंग मिशनरी, न्यूयॉर्क टाइम्स, 23 सितंबर, 2003।

[9] बीबीसी न्यूज़ इंडिया, 20 जनवरी, 2012., 9:41 जीएमटी।

[10] Chaudhary, D.S. (ed.), Nehru and Nation Building, (Jaipur: Aalekh Publishers, 2002) pp.47-58.

संदर्भ:

1. Hindu Given Death for Killing Missionary, *New York Times*, September 23, 2003.
2. Engineer, Asghar Ali, "Communalism and Communal Violence, 1996" *Economic and Political Weekly*, Vol. XXX11, No. 7, Feb 15, 1997, p.326.
3. Brass, Paul R., *The Production Of Hindu-Muslim Violence In Contemporary India*. (Washington: University of Washington Press, 2005). pp. 385–393.
4. Harnik, Deol, Religion and Nationalism in India: The Case of the Punjab, (London: Psychology Press, 2002) p.109.
5. Sarla Mudgal V. Union of India, AIR 1995, p. 326.
6. BBC News India, January 20, 2012., 9:41 GMT.
7. Motwani, Kewal, *Manu Dharma Shastra: A Sociological and Historical Study* (Madras: Ganesh and Co. , 1958) pp.4-8.
8. The Prevention of Atrocities Act: Unused Ammunition, Hrdc.net, August 31, 2003. Accessed on March 19, 2012.
9. V.A. Pai Panandiker, ed., The Politics of Backwardness: Reservation Policy in India (New Delhi: Konark Publishers Pvt Ltd, 1997), p. 194.

© National Press Associates www.npajournals.org

10. Gupta, Souvik; Meenakshi, J.V and Ray, Ranjan. "Estimates of Poverty for SC, ST and Female-Headed Households." The Economic and Political Weekly, July 29, 2000, pp. 2748–2754.
11. Nambissan, Geetha B. "Equity in Education? Schooling of Dalit Children in India." *Economic and Political Weekly* 31.16/17 (1996): 1011-1024.
12. Mohanty, Manoranjan, "Secularism: Hegemonic and Democratic*", Economic and Political Weekly*, Vol. XXIV, No. 22, June 3, 1989, p.1219.
13. Majumder, Abhijit, India's minoritism vs silent minorities, *Hindustan Times*, January 24, 2012.

© National Press Associates www.npajournals.org